P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-3* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

अम्बेडकर का सामाजिक दर्शन

सारांश

''मनुष्य चिन्तन करता है यह एक जैविक सत्य है, लेकिन उसके चिन्तन का विषय क्या है? यह एक सामाजिक सत्य है।'' समाज शास्त्रियों का कथन डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन पर पूर्णतः सत्य सिद्ध होता है। वर्तमान भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर यदि किसी चिन्तक का सर्वाधिक प्रभाव है; तो वह डॉ. भीमराव अम्बेडकर ही है। डॉ. अम्बेडकर भारत की संविधान निर्माता के साथ–साथ सभी के लिए स्वतन्त्रता समानता, बन्धुत्व और न्याय के अग्रदूत रहे है। वे समाज के हासिये पर स्थित हर व्यक्ति, महिला, कमजोर, पीड़ित, असहाय के साथ खड़े नजर आते हैं। उनका नारा था – ''शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो।'' यह सब उनके चिन्तन में किसी एक घटना का परिणाम नहीं अपितु उनके संहर्षमय जीवन की कहानी है। उन्होंने भारतीय समाज में जो देखा, सहन किया उसको समझा और समझकर उस पीड़ा का निदान खोजा, इस लेख में डॉ. अम्बेडकर के यह दर्शाने का प्रयास किया है कि उनके सामाजिक दर्शन पर भारतीय समाजिक इतिहास का किस प्रकार प्रभाव पड़ा।

मुख्य शब्द : डॉ. अम्बेडकर का दर्शन, भारतीय समाज।

विमल कुमार महावर
सहायक प्रोफेसर,
राजनीति विज्ञान विभाग,
सम्राट पृथ्वी राज चौहान
राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर

प्रस्तावना

डॉ. अम्बेडकर के दर्शन की उत्पत्ति विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों में हुई है। उन्होंने अपने दर्शन की रचना किसी एकांत निर्जन स्थान पर बैठकर नहीं की है। उन्होंने स्वयं भारत की सामाजिक व्यवस्था के असमानता और अन्याय के जहर को पीया, अछूतों और शुद्रो की दुःख भरी गाथाओं का अध्ययन किया। उन अमानवीय परिस्थितियों का सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों से वंचित इन वर्गों का अवलोकन किया। उन्होंने अवलोकन किया कि भारतीय समाज में एक बड़ा वर्ग अर्द्ध–मानव का जीवन व्यतीत कर रहा है। डॉ. अम्बेडकर उन लोगों में से एक थे जिन्होंने अपने अथक परिश्रम से मानव–अधिकारों को इन वंचित वर्गों के लिए शुलभ बनाया। उन्होंने पाया कि भारत की सामाजिक व्यवस्था पर उसके कालक्रम का प्रभाव है। जिसे निम्न काल क्रम में समझा जा सकता है–

प्राचीन काल

ऋग्वेद के पुरुष–सुक्त में कहा गया है कि संसार की समृद्धि के लिए ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य एवं पैरों से शुद्र को पैदा किया है। इस प्रकार मानव जाति चार वर्गों में विभाजित है।[1] इस विभाजन को वर्ण व्यवस्था के रुप में महान आदर्श माना गया। प्रत्येक वर्ण अपने कार्य क्षेत्र में पृथक है। इसी कारण हिन्दू विचारकों ने इस व्यवस्था को श्रम विभाजन (Division of Labour) का प्रमुख आदर्श माना। इस व्यवस्था का प्रारम्भिक उद्देश्य न्याय की स्थापना और एकता बताया जाता है। प्रत्येक को कार्य करने का अवसर दिया जाता था। प्रत्येक वर्ण कर्तव्य पालन में संलग्न रहकर लाभान्वित होता था।[2]

नैतिक दृष्टिकोण से प्रत्येक वर्ण का स्थान अपने कर्तव्यों के आधार पर निश्चित था, न कि अधिकारों की मांग पर। अधिकारों की मांग करना अनुचित और अशोभनीय माना जाता था। इसीलिए हिन्दू धार्मिक साहित्य में कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया है। यहाँ अधिकारों की माँग संघर्ष को बढ़ावा देती है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्तव्य करते रहना चाहिये, अच्छे और महान व्यक्ति कभी अधिकारों की बात नहीं करते, वे सदैव कर्तव्य पालन करते हैं। सामान्य लोग उनका अनुसरण करते है।[3] डॉ. राधाकृष्णन ने कहा है कि ''यदि सभी वर्गों के लोग अपने–अपने निश्चित कर्तव्य करते रहें तो वे उच्चतम और अमिट आनन्द की प्राप्ति कर सकते हैं।''[4] अतः कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म ने सदैव कर्तव्य पालन एवं श्रम विभाजन पर बल दिया है।

व्यवहारिक जीवन में अधिकारों को किंचित मात्र भी स्थान नहीं दिया गया है। हिन्दू समाज में ब्राह्मणों ने धूर्ततापूर्वक ईश्वर के समान स्थान प्राप्त कर लिया है। बिना किसी योग्यता एवं कार्य कुशलता के ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण माना गया।[5] ब्राह्मणों ने वर्ण व्यवस्था के आदर्श को अपनी झूठी प्रतिष्ठा का साधन बना लिया, जिसको कायम रखने के लिए उन्होंने निम्न वर्गों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये और विभिन्न अंधविश्वासों का सहारा लेकर उन्हें गुमराह करते रहे। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था ने शोषण की भावनाओं को बल दिया। इसके आधार पर ब्राह्मणों ने ऊँच–नीच की भावनाओं को उत्पन्न किया। असमता और अत्याचार जैसी सामाजिक बीमारियों को संरक्षण और संवधन मिला।[6]

व्यवहारिक रुप से वर्ण व्यवस्था एक वर्ग विशेष की स्वार्थ सिद्धी का एक साधन बन गयी। हिन्दू समाज में अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो गयी, अछूतों और शूद्रों की स्थिति पशुओं से बद्तर हो गयी। इसका सामाजिक आदर्श दोषपूर्ण बन गया, जिसके कारण सभी निम्न वर्ग पीड़ित रहने लगे। यह पीढ़ा निरन्तर रुप से चली आ रही है। परिणामस्वरूप वर्णव्यवस्था का कागजी महल बुरी तरह से ढहने लगा।

वैदिक समाज और संस्कृति पृष्ठभूमि में चले गये, क्योंकि उनमें एक ही वर्ग अर्थात् ब्राह्मणों की महिमा का गुण गान किया गया था। समाज के सम्पूर्ण हित की बात नहीं होने के कारण भारत का विकास एक पक्षीय रहा। इसी वर्ग की शिक्षा, धन, सम्पत्ति और गरिमा को सुरक्षित रखने के लिए, वैदिक काल से ही समस्त धार्मिक ग्रन्थों की रचना की गई। अतः न्याय वर्ग हित तक सीमित रह गया। मनुस्मृति के काले कानूनों की क्षुद्र–हित नीतियाँ और धर्मान्धता की बेडियों के शिकंजे ने भारतीय समाज फँस कर रह गया।

मध्यकाल

इस्लाम के आगमन के साथ भारत में एक नवीन सामाजिक दौर का उदयमान हुआ। मुस्लिम नेताओं ने सबके लिये समान अधिकार का दावा किया। प्रो. हुमायुँ कबीर के अनुसार इस्लाम का महत्वपूर्ण योगदान रहा और इसने भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया।[12]

इस्लाम की कुछ भी विशेषताएँ रही हो, किन्तु वह भारत के जन–जीवन में कोई प्रगतिशील परिवर्तन नहीं ला पाया। इस्लाम के आगमन से भारतीय समास में छुआछूत का महल और जाति–पांति का किला और अधिक दृढ़ हो गया। जाति व्यवस्था को नवीन आधार मिले। इस प्रकार इस्लाम भी भारतीय जातिवाद के शिकंजे में फंस गया।[13] इस प्रकार अंध विश्वास और सामाजिक बुराइयाँ ज्यों–की–त्यों बनी रही।

हिन्दू समाज में बनावटी रीति–रिवाज के प्रति बहुत से साधु–संतों यथा चक्रधर, रामानन्द, कबीर, नानक, चैतन्य, एकनाथ, तुकाराम, रविदास और चोखा मेला इत्यादि ने समय–समय पर विरोध प्रकट किये, सामाजिक सुधार में महत्वपूर्ण योगदान दिया, किन्तु फिर भी शुद्र और अछूतों की दशा जस–की–तस बनी रही और कोई मौलिक सुधार नहीं हुआ। यहाँ तक कि इन लोगों की परछाई भी हिन्दू–मुस्लमानों को दूषित करने लगी। उनकों गाँवों से पृथक और किनारे रखा जाने लगा, दूध देने वाले पशुओं को उनके लिये निषेध कर दिया गया और शिक्षा के द्वार बंद कर दिये गये।[15] इस प्रकार मुस्लिम काल में भी शुद्र एवं अछूतों को मानव–अधिकारों (Human Right) से वंचित रखा गया।

आधुनिक काल

भारत में अंग्रेजों के आने के बाद से आधुनिक काल कहलाता है। इसमें ईसाई नेताओं ने भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति का अध्ययन किया और यहाँ के वातावरण को अपने धर्म के प्रचार–प्रसार के अनुकूल पाया। भारतीय समाज में अनेक बुराइयों उत्पन्न हो गई थी। जन–जीवन का बौद्धिक स्तर भी गिर चुका था।[16]

ईसाई विद्वानों ने ईसा का धर्म, प्रेम एवं सद्भावना, भ्रातत्व एवं प्रजातन्त्र तथा समता और स्वतन्त्रता का सन्देश फैलाया। कहा जाता है कि इस धर्म में सभी को समान अधिकार दिये जाते है, सबका सम्मान किया जाता है।[17] ईसाई नेताओं ने दावा किया कि उनका धर्म मानव उन्नति एवं दीन–हीनों को ऊँचा उठाने के लिए स्थापित किया गया था।

ईसाई नेता और विद्वान अछूतों और शूद्रों की वास्तविक स्थिति को समझ ही नहीं सके। अतः वे उनकी वास्तविक समस्याओं का हल नहीं कर सके। उन्होंने केवल उन्हीं व्यक्तियों की आर्थिक सहायता दी जो ईसाई होने वाले थे; या हो चुके थे। उनका उद्देश्य अपने व्यापार और अपने धर्म का प्रचार करना था।

आधुनिक काल में कई धार्मिक सम्प्रदाय और संस्थाओं की स्थापना हुई, जिन्होंने सामाजिक एवं आध्यत्मिक उत्थान का प्रयास किया।

ब्रह्म समाज

इस संगठन का मुख्य उद्देश्य हिन्दू समाज की शुद्धि करना था। बाल विवाह, सती प्रथा एवं अन्य सामाजिक बुराइयों को दूर करने में इसने योगदान दिया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, परार्थ, उपयोगितावाद एवं उदार मानवता इस समाज के आधार थे।[18]

आर्य समाज

आर्य समाज की स्थापना भी हिन्दू समाज की शुद्धि एवं प्रगति के लिए की गई थी। जातिवाद, बाल–विवाह, मूर्तिपूजा एवं सती प्रथा का विरोध किया। थोड़े समय के लिए आर्य समाज ने अछूतों की सामाजिक दशा सुधारने का कार्य भी हाथ में लिया। लेकिन इस समाज के कार्यक्रम स्पष्ट एवं सुधारवादी नहीं थे।

प्रार्थना समाज

प्रार्थना समाज भी एक सुधारवादी संगठन था जिसका उद्देश्य जातिवाद का अंत करना था। इसके प्रवर्तक रानाडे ने हिन्दू समाज की सराहनीय सेवा की। वे हिन्दू समाज को एक नवीन रुप देना चाहते थे इसलिये उन्होंने सभी वर्गों को समान अधिकारों की मांग की।[19]

इन संस्थाओं के सुधारवादी दृष्टिकोण के द्वारा भी शुद्र और अछूतों की दशा ठीक नहीं हो पायी। इन

आन्दोलनों के होते हुए भी सामाजिक सम्बन्ध कष्टदायक थे। अछूतों के लिए सामान्य सुविधाओं के द्वारा बन्द थे। कुओं से पानी भरना बन्द था, सार्वजनिक जलाशय उनके लिए वर्जित थे। उनके बच्चों को आश्रम और पाठशालाओं में कोई स्थान नहीं था। यदपि अछूत हिन्दू देवी देवताओं को पूजते थे किन्तु मंदिरों में उनका प्रवेश वर्जित था। नाई उनके बाल नहीं काटते थे, धोबी उनके कपड़े नहीं धोते थे। राज्य सेवाओं में उनके लिये कोई स्थान नहीं था। उनके लिये चारों ओर अज्ञान और अत्याचार का साम्राज्य था। जीवन को प्रगतिशील बनाने के लिए उनके पास कोई साधन नहीं थे। गाँवों के किनारे, गंदी बस्तियों में रहने को वे मजबूर थे। हिन्दू, मुसलमान एवं ईसाई भी अछूतों को अर्द्ध मानव और पशुओं से बद्तर समझते थे।[20]

वर्तमान संविधान लागू होने से पूर्व अछूतों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता था।

(अ) वे अछूत, जिनको छूना पाप था।
(ब) वे अछूत, जिनकी परछाई सवर्ण हिन्दुओं को दूषित बना देती थी।
(स) वे अछूत, जिनको देखने मात्र से महापाप बढ़ जाता था।

हिन्दू समाज के विषय में और इससे अधिक क्या कहा जा सकता है जिसमें मनुष्य की परछाई, छुना एवं देखना केवल महापाप समझा ही नहीं गया अपितु उन्हें व्यवहारिक रूप भी दिया गया।

अध्ययन का उद्देश्य

वर्तमान समय में भारत में डॉ. अम्बेडकर के विचारों का तेजी से प्रसार हो रहा है। सामाजिक न्याय की उनकी अवधारणा राजनीतिक और सामाजिक रुप से मान्य होती जा रही है। उनके चिन्तन में समाज के निचले तबके के साथ, स्त्रियों के साथ समानता, सबके अधिकारों और समाज में बन्धुता लाने वाले तत्व समाहित है। सामाजिक ऐतिहासिक रुप से उनके चिन्तन पर कसिका, कतिना प्रभाव रहा और यह कहाँ तक उचित है तथा न्याय संगत है। इसका अवलाकन करना ही इस पेपर का उद्देश्य है।

निष्कर्ष

डॉ. अम्बेडकर से पूर्व ऐसी ही सामाजिक धार्मिक परिस्थितियाँ विद्मान थी। उनका जन्म 14 अप्रेल 1891 को महाराष्ट्र की एक अछूत जाति में हुआ था। इस जाति का दुर्भाग्य भी वैसा ही था जैसा अन्य अछूत जातियों का था। डॉ. अम्बेडकर के जीवन दर्शन पर इस प्रकार के सामाजिक वातावरण का प्रभाव पडना स्वभाविक था। समाज शास्त्रियों का यह कहना ठीक ही है कि ''मनुष्य चिन्तन करता है, यह एक जैविक सत्य है लेकिन उसके चिन्तन का विषय क्या है, यह एक सामाजिक तथ्य है।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *आर.एन. मुखर्जी : ए हिस्ट्री ऑफ सोशल थॉट, 1960, पृ. 17.*
2. *युनेस्को ज. पब्लिकेशन : इण्टर्रिलेशन्स ऑफ कल्चर्स, 1955, पृ. 152.*
3. *युनेस्को ज. पब्लिकेशन : इण्टर्रिलेशन्स ऑफ कल्चर्स, 1955, पृ. 146–147.*
4. *एस. राधाकृष्णन : ईस्टर्न रिलिजन्स एण्ड वेस्टर्न थॉट 1940, पृ. 366.*
5. *धनन्जय कीर : अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन 1954, पृ. 3.*
6. *एस. राधाकृष्णन : द् हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ 1949, पृ. 93.*
12. *इण्डियन हिस्टी – ए रिव्यू पृ. 73.*
13. *एम यासीन : ए सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, 1958, पृ. 179.*
15. *डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन, पृ. 1.*
16. *डी.पी. मुखर्जी : मॉर्डन इण्डियन कल्चर 1948, पृ. 62.*
17. *जी.एफ. थामस : क्रिश्चियन एथिक्स एण्ड मॉरल फिलॉसफी, 1957, पृ. 305.*
18. *बी.जी. तिवारी : सेक्यूलरिज्म एण्ड कॉगनेट ट्रेन्डस इन इण्डियन एथिक्स, आगरा यूनिवर्सिटी जनरल ऑफ रिसर्च लेटर्स, 1954, पृ. 82.*
19. *बी.आर. अम्बेडकर : रानाडे गाँधी एण्ड जिन्ना, 1943, पृ. 37 व 40.*
20. *डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन, पृ. 1–2.*